

का संगम है। इस प्रकार उनमें एक साथ कबीर, रवींद्रनाथ व तुलसी एकाकार हो उठते हैं। इसके बाद, उससे जो प्राणधारा फूटती है वह लोकधर्मी रोमैंटिक धारा है, जो उनके उच्च कृतित्व को सहजग्राह्य बनाए रखती है। उनकी सांस्कृतिक दृष्टि जबरदस्त है। उसमें इस बात पर विशेष बल है कि भारतीय संस्कृति किसी एक जाति की देन नहीं, बल्कि समय-समय पर उपस्थित अनेक जातियों के श्रेष्ठ साधनांशों के लवण-नीर संयोग से उसका विकास हुआ है। उसकी मूल चेतना विराट मानवतावाद है, जिसके संस्पर्श से कला और साहित्य ही नहीं, यह संपूर्ण जीवन ही सौंदर्य व आनंद से परिपूर्ण हो उठता है।

द्विवेदी जी के सभी उपन्यास समाज के जात-पाँत और मजहबों में विभाजन और आधी आबादी (स्त्री) के दलन की पीड़ा को सबसे बड़े सांस्कृतिक संकट के रूप पहचानने, रचने और सामंजस्य में समाधान खोजने का साहित्य है। वे स्त्री को सामाजिक अन्याय का सबसे बड़ा शिकार मानते हैं तथा सांस्कृतिक ऐतिहासिक संदर्भ में उसकी पीड़ा का गहरा विश्लेषण करते हुए सरस श्रद्धा के साथ उसकी महिमा प्रतिष्ठित करते हैं— विशेषकर **बाणभट्ट की आत्मकथा** में। मानवता और लोक से विमुख कोई भी विज्ञान, तंत्र-मंत्र, विश्वास या सिद्धांत उन्हें ग्राह्य नहीं है और मानव की जिजीविषा और विजययात्रा में उनकी अखंड आस्था है। इसी से वे मानवतावादी साहित्यकार व समीक्षक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

द्विवेदी जी का आलोचक व्यक्तित्व हिंदी-चिंताधारा की सहज लोक-परंपरा को पहचान लेता है और उसी से संबद्ध नाथों-सिद्धों और कबीर से हिंदी की साहित्य-परंपरा को जोड़ कर उसे एक प्रगतिशील मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करता है। भक्तिकाल को भारतीय चिंताधारा का सहज विकास मानने वाले इतिहासकार के रूप में उनकी भूमिका ऐतिहासिक महत्त्व रखती है।

द्विवेदी जी का निबंध-साहित्य इस अर्थ में बड़े महत्त्व का है कि साहित्य-दर्शन तथा समाज-व्यवस्था संबंधी उनकी कई मौलिक उद्भावनाएँ मूलतः निबंधों में ही मिलती हैं, पर यह विचार-सामग्री पांडित्य के बोझ से आक्रांत होने की जगह उसके बोध से अभिषिक्त हैं। अपने लेखन द्वारा निबंध-विधा को सर्जनात्मक साहित्य की कोटि में ला देने वाले द्विवेदी जी के ये निबंध व्यक्तित्व-व्यंजना और आत्मपरक शैली से युक्त हैं।

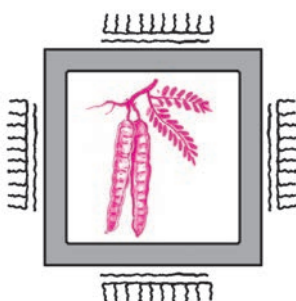


यहाँ प्रस्तुत ललित निबंध **शिरीष के फूल** लेखक के संग्रह **कल्पलता** से उद्धृत है। इसमें लेखक आँधी, लू और गरमी की प्रचंडता में भी अवधूत की तरह **अविचल** होकर कोमल पुष्पों का सौंदर्य बिखेर रहे शिरीष के माध्यम से मनुष्य की अजेय जिजीविषा और तुमुल कोलाहल कलह के बीच धैर्यपूर्वक, लोक के साथ चिंतारत, कर्तव्यशील बने रहने को महान मानवीय मूल्य के रूप में स्थापित करता है। ऐसी भावधारा में बहते हुए उसे देह-बल के ऊपर आत्मबल का महत्त्व सिद्ध करने वाली इतिहास-विभूति गांधीजी की याद हो आती है तो वह गांधीवादी मूल्यों के अभाव की पीड़ा से भी कसमसा उठता है। निबंध की शुरुआत में लेखक शिरीष पुष्प की कोमल सुंदरता के जाल बुनता है, फिर उसे भेदकर उसके इतिहास में और फिर उसके जरिये मध्यकाल के सांस्कृतिक इतिहास में पैठता है; फिर तत्कालीन जीवन व सामंती वैभव-विलास को सावधानी से उकेरते हुए उसका खोखलापन भी उजागर करता है। लेखक अशोक के फूल के भूल जाने की तरह ही शिरीष को नजरअंदाज किए जाने की साहित्यिक घटना से आहत है और इसी में उसे सच्चे कवि का तत्त्व-दर्शन भी होता है। उसके अनुसार योगी की अनासक्त शून्यता और प्रेमी की सरस पूर्णता एक साथ उपलब्ध होना सत्कवि होने की एकमात्र शर्त है। ऐसा कवि ही समस्त प्राकृतिक और मानवीय वैभव में रमकर भी चुकता नहीं और निरंतर आगे बढ़ते जाने की प्रेरणा देता है।

शिरीष के पुराने फलों की अधिकार-लिप्सु खड़खड़ाहट और नए पत्ते-फलों द्वारा उन्हें धकियाकर बाहर निकालने में लेखक साहित्य, समाज व राजनीति में पुरानी और नयी पीढ़ी के द्वंद्व को संकेतित करता है तथा स्पष्ट रूप से पुरानी पीढ़ी और हम सब में नयेपन के स्वागत का साहस देखना चाहता है। इस निबंध का शिल्प इसी में चर्चित इक्षुदंड की तरह है—सांस्कृतिक संदर्भों व शब्दावली की भड़कीली खोल के भीतर सहज भावधारा के मधुरस से युक्त। यह हर तरह से आस्वाद्य और प्रयोजनीय है तथा इस प्रकार लेखक के प्रतिनिधि निबंधों में से एक है।



शिरीष के फूल



जहाँ बैठ के यह लेख लिख रहा हूँ उसके आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, शिरीष के अनेक पेड़ हैं। जेठ की जलती धूप में, जबकि धरित्री निर्धूम अग्निकुंड बनी हुई थी, शिरीष नीचे से ऊपर तक फूलों से लद गया था। कम फूल इस प्रकार की गरमी में फूल सकने की हिम्मत करते हैं। कर्णिकार और आरग्वध (अमलतास) की बात मैं भूल नहीं रहा हूँ। वे भी आस-पास बहुत हैं। लेकिन शिरीष के साथ आरग्वध की तुलना नहीं की जा सकती। वह पंद्रह-बीस दिन के लिए फूलता है, वसंत ऋतु के पलाश की भाँति। कबीरदास को इस तरह पंद्रह दिन के लिए लहक उठना पसंद नहीं था। यह भी क्या कि दस दिन फूले और फिर खंखड़-के-खंखड़-‘दिन दस फूला फूलिके खंखड़ भया पलास!’ ऐसे दुमदारों से तो लँडूरे भले। फूल है शिरीष। वसंत के आगमन के साथ लहक उठता है, आषाढ़ तक जो निश्चित रूप से मस्त बना रहता है। मन रम गया तो भरे भावों में भी निर्घात फूलता रहता है। जब उमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है, एकमात्र शिरीष कालजयी अवधूत की भाँति जीवन की अजेयता का मंत्र प्रचार करता रहता है। यद्यपि कवियों की भाँति हर फूल-पत्ते को देखकर मुग्ध होने लायक हृदय विधाता ने नहीं दिया है, पर नितांत टूँठ भी नहीं हूँ। शिरीष के पुष्प मेरे मानस में थोड़ा हिल्लोल जरूर पैदा करते हैं।

शिरीष के वृक्ष बड़े और छायादार होते हैं। पुराने भारत का रईस जिन मंगल-जनक वृक्षों को अपनी वृक्ष-वाटिका की चहारदीवारी के पास लगाया करता था, उनमें एक शिरीष भी है। (वृहतसंहिता 55,13) अशोक, अरिष्ट, पुन्नाग और शिरीष के छायादार और घनमसृण हरीतिमा से परिवेष्टित वृक्ष-वाटिका जरूर बड़ी मनोहर दिखती होगी। वात्स्यायन ने ‘कामसूत्र’ में बताया है कि वाटिका के सघन छायादार वृक्षों की छाया में ही झूला(प्रेखा दोला) लगाया जाना चाहिए। यद्यपि पुराने कवि बकुल के पेड़ में ऐसी दोलाओं को लगा देखना चाहते थे, पर शिरीष भी क्या बुरा है! डाल इसकी अपेक्षाकृत कमजोर जरूर होती है, पर उसमें झूलनेवालों का वजन भी तो बहुत ज्यादा नहीं होता। कवियों की यही तो बुरी आदत है कि वजन का एकदम खयाल नहीं करते। मैं तुंदिल नरपतियों की बात नहीं कह रहा हूँ, वे चाहें तो लोहे का पेड़ बनवा लें।

आरोह

114

शिरीष का फूल संस्कृत-साहित्य में बहुत कोमल माना गया है। मेरा अनुमान है कि कालिदास ने यह बात शुरू-शुरू में प्रचार की होगी। उनका इस पुष्प पर कुछ पक्षपात था (मेरा भी है)। कह गए हैं, शिरीष पुष्प केवल भौरों के पदों का कोमल दबाव सहन कर सकता है, पक्षियों का बिलकुल नहीं— ‘पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीष पुष्पं न पुनः पतत्रिणाम्।’ अब मैं इतने बड़े कवि की बात का विरोध कैसे करूँ? सिर्फ विरोध करने की हिम्मत न होती तो भी कुछ कम बुरा नहीं था, यहाँ तो इच्छा भी नहीं है। खैर, मैं दूसरी बात कह रहा था। शिरीष के



फूलों की कोमलता देखकर परवर्ती कवियों ने समझा कि उसका सब-कुछ कोमल है! यह भूल है। इसके फल इतने मजबूत होते हैं कि नए फूलों के निकल आने पर भी स्थान नहीं छोड़ते। जब तक नए फल-पत्ते मिलकर, धकियाकर उन्हें बाहर नहीं कर देते तब तक वे डटे रहते हैं। वसंत के आगमन के समय जब सारी वनस्थली पुष्प-पत्र से मर्मरित होती रहती है, शिरीष के पुराने फल बुरी तरह खड़खड़ाते रहते हैं। मुझे इनको देखकर उन नेताओं की बात याद आती है, जो किसी प्रकार ज़माने का रुख नहीं पहचानते और जब तक नयी पौध के लोग उन्हें धक्का मारकर निकाल नहीं देते तब तक जमे रहते हैं।

मैं सोचता हूँ कि पुराने की यह अधिकार-लिप्सा क्यों नहीं समय रहते सावधान हो जाती? जरा और मृत्यु, ये दोनों ही जगत के अतिपरिचित और अतिप्रामाणिक सत्य हैं। तुलसीदास ने अफ़सोस के साथ इनकी सच्चाई पर मुहर लगाई थी—‘धरा को प्रमान यही तुलसी जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना!’ मैं शिरीष के फूलों को देखकर कहता हूँ कि क्यों नहीं फलते ही समझ लेते बाबा कि झड़ना निश्चित है! सुनता कौन हैं? महाकालदेवता सपासप कोड़े चला रहे हैं, जीर्ण और दुर्बल झड़ रहे हैं, जिनमें प्राणकण थोड़ा भी ऊर्ध्वमुखी है, वे टिक जाते हैं। दुरंत प्राणधारा और सर्वव्यापक कालाग्नि का संघर्ष निरंतर चल रहा है। मूर्ख समझते हैं कि जहाँ बने हैं, वहीं देर तक बने रहें तो कालदेवता की आँख बचा जाएँगे। भोले हैं वे। हिलते-डुलते रहो, स्थान बदलते रहो, आगे की ओर मुँह किए रहो तो कोड़े की मार से बच भी सकते हो। जमे कि मरे!

एक-एक बार मुझे मालूम होता है कि यह शिरीष एक अद्भुत अवधूत है। दुःख हो या सुख, वह हार नहीं मानता। न ऊँधो का लेना, न माधो का देना। जब धरती और आसमान जलते रहते हैं, तब भी यह हज़रत न जाने कहाँ से अपना रस खींचते रहते हैं। मौज में आठों याम मस्त रहते हैं। एक वनस्पतिशास्त्री ने मुझे बताया है कि यह उस श्रेणी का पेड़ है जो वायुमंडल से अपना रस खींचता है। ज़रूर खींचता होगा। नहीं तो भयंकर लू के समय इतने कोमल तंतुजाल और ऐसे सुकुमार केसर को कैसे उगा सकता था? अवधूतों के मुँह से ही संसार की सबसे सरस रचनाएँ निकली हैं। कबीर बहुत-कुछ इस शिरीष के समान ही थे, मस्त और बेपरवा, पर सरस और मादक। कालिदास भी ज़रूर अनासक्त योगी रहे होंगे। शिरीष के फूल फक्कड़ाना मस्ती से ही उपज सकते हैं और ‘मेघदूत’ का काव्य उसी प्रकार के अनासक्त अनाविल उन्मुक्त हृदय में उमड़ सकता है। जो कवि अनासक्त नहीं रह सका, जो फक्कड़ नहीं बन सका, जो किए-कराए का लेखा-जोखा मिलाने में उलझ गया, वह भी क्या कवि है? कहते हैं कर्णाट-राज की प्रिया विज्जिका देवी ने गर्वपूर्वक कहा था कि एक कवि ब्रह्मा थे, दूसरे वाल्मीकि और तीसरे व्यास। एक ने वेदों को दिया, दूसरे ने रामायण को और तीसरे ने महाभारत को। इनके अतिरिक्त और कोई यदि कवि होने का दावा करे तो मैं

कर्णाट-राज की प्यारी रानी उनके सिर पर अपना बायाँ चरण रखती हूँ— ‘तेषां मूर्ध्नि ददामि वामचरणं कर्णाट-राजप्रिया!’ मैं जानता हूँ कि इस उपालंभ से दुनिया का कोई कवि हारा नहीं है, पर इसका मतलब यह नहीं कि कोई लजाया नहीं तो उसे डाँटा भी न जाए। पर मैं कहता हूँ कवि बनना है मेरे दोस्तो, तो फक्कड़ बनो। शिरीष की मस्ती की ओर देखो। लेकिन अनुभव ने मुझे बताया है कि कोई किसी की सुनता नहीं। मरने दो!

कालिदास वज्रन ठीक रख सकते थे, क्योंकि वे अनासक्त योगी की स्थिर-प्रज्ञता और विदग्ध प्रेमी का हृदय पा चुके थे। कवि होने से क्या होता है? मैं भी छंद बना लेता हूँ, तुक जोड़ लेता हूँ और कालिदास भी छंद बना लेते थे—तुक भी जोड़ ही सकते होंगे इसलिए हम दोनों एक श्रेणी के नहीं हो जाते। पुराने सहृदय ने किसी ऐसे ही दावेदार को फटकारते हुए कहा था—‘वयमपि कवयः कवयः कवयस्ते कालिदासाद्या!’ मैं तो मुग्ध और विस्मय-विमूढ़ होकर कालिदास के एक-एक श्लोक को देखकर हैरान हो जाता हूँ। अब इस शिरीष के फूल का ही एक उदाहरण लीजिए। शकुंतला बहुत सुंदर थी। सुंदर क्या होने से कोई हो जाता है? देखना चाहिए कि कितने सुंदर हृदय से वह सौंदर्य डुबकी लगाकर निकला है। शकुंतला कालिदास के हृदय से निकली थी। विधाता की ओर से कोई कार्पण्य नहीं था, कवि की ओर से भी नहीं। राजा दुष्यंत भी अच्छे-भले प्रेमी थे। उन्होंने शकुंतला का एक चित्र बनाया था; लेकिन रह-रहकर उनका मन खीझ उठता था। उहूँ, कहीं-न-कहीं कुछ छूट गया है। बड़ी देर के बाद उन्हें समझ में आया कि शकुंतला के कानों में वे उस शिरीष पुष्प को देना भूल गए हैं, जिसके केसर गंडस्थल तक लटके हुए थे, और रह गया है शरच्चंद्र की किरणों के समान कोमल और शुभ्र मृणाल का हार।

कालिदास सौंदर्य के बाह्य आवरण को भेदकर उसके भीतर तक पहुँच सकते थे, दुख हो कि सुख, वे अपना भाव-रस उस अनासक्त कृपीवल की भाँति खींच लेते थे जो निर्दलित ईक्षुदंड से रस निकाल लेता है। कालिदास महान थे, क्योंकि वे अनासक्त रह सके थे। कुछ इसी श्रेणी की अनासक्ति आधुनिक हिंदी कवि सुमित्रानंदन पंत में है। कविवर रवींद्रनाथ में यह अनासक्ति थी। एक जगह उन्होंने लिखा—‘राजोद्यान का सिंहद्वार कितना ही अभ्रभेदी क्यों न हो, उसकी शिल्पकला कितनी ही सुंदर क्यों न हो, वह यह नहीं कहता कि हममें आकर ही सारा रास्ता समाप्त हो गया। असल गंतव्य स्थान उसे अतिक्रम करने के बाद ही है, यही बताना उसका कर्तव्य है।’ फूल हो या पेड़, वह अपने-आप में समाप्त नहीं है। वह किसी अन्य वस्तु को दिखाने के लिए उठी हुई अँगुली है। वह इशारा है।

शिरीष तरु सचमुच पक्के अवधूत की भाँति मेरे मन में ऐसी तरंगें जगा देता है जो ऊपर की ओर उठती रहती हैं। इस चिलकती धूप में इतना इतना सरस वह कैसे बना रहता है? क्या ये बाह्य परिवर्तन—धूप, वर्षा, आँधी, लू—अपने आपमें सत्य नहीं हैं? हमारे देश के ऊपर